हम तीनों अपराधी हैं
तन वचन और मन
और तीनों आ
सविनय कहते हैं
पद दलित कंकरों को
तुम लघुतम कण हो
निरपराध हो,
हम गुरुतम मन हो
सापराध हैं
तुम पर पद रख कर
हिंसक हो, अहिंसक से
पथ चलते गये,
पर !
प्रतिकूल गये
भूल के लिए
क्षमा याचना तक
भूल गये,
लौट आये हैं
अपराध क्षम्य हो
अब कंकर बोलते हैं
अपने मुख खोलते हैं
अपने आचरण पर
फूट फूट रोते हैं
नहीं नहीं कभी नहीं

इस विनय को हम स्वीकारते नहीं
अन्यथा धरती माँ
धारण नहीं करेगी हमें
नीचे खिसकेगी
सब सीमा - मर्यादायें
ठस होंगी
तारण - तरणों की
चरण - शीलों की
चरण - रज
सर पर लेनी थी ,
हाय! किन्तु
कठिन कठोर हैं
अधम घोर हैं
हम सब
तीन पहलूदार तीखे
त्रिशूल शूल हैं
हम स्थावर हैं
परम पामर हैं
निर्दय हृदय शून्य ,
तुम चर हो जंगम
चराचर बन्धु !
सदय हो अभय - निधान
सत्पथ पर यात्रित हो

पदयात्री हो
कर पात्री हो,
लाल लाल हैं
कमल चाल है
युगम पाद तल
तुम सब के ,
छिल गये हैं
जल गये हैं
लहूलुहान हो
और ललाई में
ढल गये हैं
जिनमें
गोल गोल आँवले से
फफोले फोले
पल गये हैं
यह कठोरता की
कृपा है हमारी
अपवर्ग पथ पर चलते तुम
उपसर्ग हुआ
हमसे तुम पर
उपकार दूर रहा
अपकार भरपूर रहा
तुम्हारे प्रति हमारा,

अपराध क्षम्य हो
तुम लौट आये
कृपा हुई हम पर
हम अपद हैं
स्वपद हीन
कैसे आते चलकर तुम तक,
स्वीकार करो अब
शत शत प्रणाम
और आशीष दो
हम भी तुम सम
शिव - पथ पथिक
गुणों में अधिक
बन सकें
और
साधना की ऊँचाइयाँ
शीघ्रातिशीघ्र चढ़ सकें
बन सकें हम
अन्ततोगत्वा
तुम सम श्रमण
और चमन!

□□□

हुंकार अहं का

कृति रहे
संस्कृति रहे
चिरकाल तक
मात्र! जीवित !
सहज प्रकृति का
शृंगार श्रीकार
मनहर आकार ले
जिसमें आकृत होता है,
कर्ता न रहे
विश्व के सम्मुख
विषम विकृति का
अपार संसार
अहंकार का हुंकार ले
जिसमें जागृत होता है
और हित
निराकृत होता है ।

□□□

मिलन नहीं; मिला लो !

काया के मिलन से
माया के छलन से
ऊब गया है यह
भटकता भटकता
विपरीत दिशा में
खूब गया है यह
सहचर हैं बहुत सारे
पर !कैसे लूँ ?
सहयोग उनसे
अंधों से कंधों का सहारा
मिल सकता है
किन्तु
पथ का दर्शन - प्रदर्शन संभव नहीं है
यह भी अंधा है
इसे आँख मत दो भले ही
मत दो प्रकाश
किन्तु
हस्तावलम्बन तो दो !
इसे ऊपर उठा लो गर्त से
और मिलन नहीं
अपने आलोक में मिला लो
हे सब द्वन्द्वों से अतीत !
अजित ! अभीत !

□□□

रंगीन व्यंग

बालक और पालक
दो दर्शक हैं
हरित - भरित
मनहर परिसर है
सरवर तट है
श्वास - श्वास पर
तरंग का
प्रवास चल रहा है
अंतरंग गा रहा है
तरंग - रंग
भा रहा है
तभी तो
बालक का प्रतिपल
प्रयास चल रहा है
बहिरंग जा रहा है
तरंग पकड़ने,
और निस्संग तट में
फेन का बहाना है
हास चल रहा है
या उपहास चल रहा है ?
बालक पर क्या ? पालक पर
पता नहीं किस पर?

□□□

मन की मौत

स्मृति का विकास
विज्ञता का
स्मृति का विनाश
अज्ञता का
प्रतीक है,
यह मान्यता
लौकिक है
अलौकिक नहीं
इसीलिए यह
अलीक है किन्तु
स्मरण का मरण ही
यथार्थ ज्ञान है ।

□□□

प्रलय काल !

अन्याय की उपासना कर
वासना का दास बनकर
धनिक बनने की अपेक्षा
न्याय मार्ग का उपासक बन
धनिक नहीं बनना भी
श्रेष्ठतम है,
किन्तु
अकर्मण्यता
मानव मात्र को
अभिशाप है
महा पाप है
कारण !
अन्याय से जीवन बदनाम होता है
न्याय से नाम होता है
जीवन कृतकाम होता है
जबकि
अकर्मण्य की छाँव में
जीवन तमाम होता है ।

□□□

पेट से पेटी

अन्न पान से
पेट की भूख
जब शान्त होती है
तब जागती है
रसना की भूख,
रस का मूल्यांकन !
नासा सुवास माँगती है
ललित - लावण्य की ओर
आँखें भागती हैं,
श्रवणा उतारती
स्वरों की आरती है
मन मस्ताना होता है
सब का कपताना होता है
आविष्कार कपाट का होता है
अन्यथा
फण - कुचली घायल नागिन सी
बिल से बाहर
निकलती नहीं हैं
ये इन्द्रिय - नागिन !

□□□

बोझिल पद

कभी कभी
आशा निराशता में
घुल जाती है ,
हे प्राणनाथ !
अन्तिम ऊँचाई है वह
लोक शिखर पर बसे हो,
अन्तिम सिचाई है वह
अनुपम द्युति से लसे हो
यह भी सत्य है, कि
अन्तिम सिंचाई है वह
कमल फूल से हँसे हो
किन्तु तुम्हें
निहार नहीं सकता
ऊपर उठाकर माथा
दूरी बहुत है
तुम तक विहार नहीं हो सकता
पद यात्री है यह
इसलिए
इसकी दृष्टि से
ओझल हो गये हो।
कारण विदित ही है
इसके माथे पर
चिर संचित पाप का भार है
फलस्वरूप
इसके पद बोझिल हो गये हैं
और तुम
ओझल हो गये हो ।

□□□

सन्धि, अन्धी से

इस बात को स्वीकारना होगा
कि
आँख के पास
श्रद्धा नहीं होती है क्योंकि
जब कुछ नहीं दिखता एकान्त में
आँखें भय से कंपती हैं,
और !
श्रद्धा !!
अन्धी होती है,
किन्तु
श्रद्धा के पास
उदारतर उर होता है
जिसमें मधुरिम
सुगन्धि होती है
प्रभु का नाम जपती है,
तभी तो सहज रूप से
अज्ञेय किन्तु
श्रद्धेय प्रभु से
सन्धि होती है
श्रद्धा! अन्धी होती है ।

□□□

काया,माया

वह गृहस्थ
जिसके पास,
कौड़ी भी नहीं है
कौड़ी का नहीं है,
वह श्रमण
जिसके पास
कौड़ी भी है ।
कौड़ी का नहीं है,
एक की शोभा
माया है
राग रंग
और एक की
मात्र काया
त्याग संग ।

□□□

समता !

भुक्ति की ही नहीं
मुक्ति की भी
चाह नहीं है
इस घट में,
वाहवाह की
परवाह नहीं है
प्रशंसा के क्षण में
दाह के प्रवाह में अवगाह करूँ
पर ! आह की तरंग भी
कभी न उठे
इस घट में ... संकट में
इसके अंग – अंग में
रग – रग में
विश्व का तामस आ
भर जाय
किन्तु विलोम – भाव से,
यानी!
ता. म. स. / स. म. ता !

□□□

दयालु पंजे !

खर नखरदार
जिसके पंजे हैं
कभी चूहों का,
शिकार खेलती है
कभी प्राण प्यारे
संतान झेलती है
जिन पंजों में
प्यार पलता है
उन्हीं पंजों में
काल छलता है
ऐसा लगता है
किन्तु पंजे आप
हिंसक हैं, न अहिंसक
प्राण का पलना
काल का छलना
यह अन्तर घटना है
बाहर अभिव्यक्ति है
तरंग पंक्ति है
घटना का घटक
अन्दर बैठा है
अव्यक्त – व्यक्ति है वह,
उसी पर आधारित है यह
वही विश्व को बनाता भुक्ति
वही दिलाता विश्व को मुक्ति
हे! भोक्ता पुरुष!
स्वयं का भोग कब करेगा?
निश्छल योग कब धरेगा?

□□□

द्विमुख पंथी !

सम्यक् साधन हो
सत् शक्ति हो
समाराधन हो
सद् भक्ति हो
अमूर्त भी साध्य
मूर्त हो उठता है
अमूर्त आराध्य
स्फूर्त हो उठता है,
यह सदुक्ति चरितार्थ होती तब,
'एक पंथ दो काज'
असम्भव कुछ नहीं
बस! सब कुछ सम्भव है
भुक्ति और मुक्ति
युगपत् ताकती है उसे
सत्पथ का पथिक बना है
किन्तु
द्विमुख पंथी 'सो'
पथ पर चल नहीं सकता
अनन्त का फल चख नहीं सकता ।

□□□

संन्यास !

बहुतों के मुख से यही सुनता आया था
विश्वस्त हो यही गुनता आया था
कि
सबसे नाता तोड़ना
वन की ओर मुख मोड़ना
संन्यास है,
किन्तु आज
गुरु कृपा हुई है
ठीक पूर्व से विपरीत
विश्वास हुआ है
संन्यास का अहसास हुआ है,
कि
बिना भेद भाव से
बिना खेद भाव से
बस मात्र
एक साथ
सब के साथ
साम्य का नाता जोड़ना
और 'मैं' को
विश्व की ओर मोड़ना ही
सही संन्यास है।

□□□

मोम बनूँ मैं

वरद हस्त जो रहा है
इस मस्तक पर
हे गुरुवर !
कठिन से कठिनतर
पाषाण हृदय भी
मृदुल मोम हो गए,
दुख की आग बरसाते
प्रचण्ड प्रभाकर भी
शरद सोम हो गए,
विरोध की ज्वाला से जलते
विलोम वातावरण भी
अनुलोम हो गए
चेतना की समग्र सत्ता
भय से संकोचित, मूर्च्छित थी आज तक
अब वह अभय - जागृत
पुलकित रोम - रोम हो गए,
प्रति - धाम से
प्रति - नाम से
मधुर ध्वनि की तरंग आ रही है
श्रवणों तक
बस! वह सब
सुखद ओम् हो गए ।

□□□

कुटिया !

ओ री ! कलि की सृष्टि
कलि से कलुषित
कलंकिनी दृष्टि !
सदा शंकिनी !
अवगुण - अंकिनी !
कभी - कभी तो
गुण का चयन किया कर !
तेरी वंकिम दृष्टि में
केवल अवगुण ही झलकते हैं क्या ?
यहाँ गुण भी बिखरे हैं
तरतमता हो भले ही
ऐसा कोई जीवन नहीं है
कि
जिसमें
एक भी गुण नहीं मिलता हो
नगर - उपनगर में
पुर - गोपुर में
अभ्रंलिह प्रासाद हो
या कुटिया
जिसके पास
कम से कम एक तो
प्रवेश द्वार
होता अवश्य !

□□□

अनमोल की आस

याचना का चोला पहना
यातना का पहना गहना
आँगन आँगन
कितने प्राँगण ?
घूमा है यह
सुख - सा कुछ
मिलता आया
और मिटता आया
सुख मिटता आया
सुख की आस अमिट !
आज तक !
अमित मिला नहीं
अमिट मिला नहीं
हे! अनन्त सन्त
अब मोल नहीं
अनमोल मिले !

□□□

माहोल की प्यास

ओ ! श्रवणा
कितनी बार
श्रवण किया,
ओ ! मनोरमा
कितनी बार
स्मरण किया
कब से चल रहा है
संगीत - गीत यह
कितना काल व्यतीत हुआ
भीतरी भाग भीगे नहीं
दोनों अंग बहरे
कहाँ हुए
हरे भरे !
हे ! नीराग हरे !
अब बोल नहीं
माहोल मिले ।

□□□

संयत आँखें

डाल - डाल के
गाल - गाल पर
लाल - लाल है
फूल गुलाब !
फूल रहे हैं
लज्जा की घूँघट
खोल - खोल कर
अधर में डोल रहे
मार्दव अधरों पर
कल - कमनीयता
भीतरी संवेदन
रहस्मय बोल
बोल रहे हैं
अनमोल रहे
या मोल रहे,
यह एक प्रश्न है
दर्शकों के सम्मुख
और उस ओर
पराग प्यासा
सुगन्धभोजी

भ्रमर दल ने
अपलक
एक झलक
दृष्टिपात किया
बस ! धन्य !
इतने से ही
आँखों का पेट भर गया
तृप्ति का अनुभव,
अपने में
रूप - रंग समेट कर
पलक बन्द हुए
और रसना
गुनगुनाती
प्रारम्भ हुआ
गुण - गान - कीर्तन
हाव - भाव
टुन.... टुन.... नर्तन,
किन्तु नासा की भूख
दुगुनी हुई
गंध से मिलने
बातचीत करने
लालायित है

उतावती करती - करती
गम्भीर होती जा रही है
जैसे कहीं
विषयी उपस्थित होकर भी
विषय अनुपस्थित हो,
अब नासा,
अपनी अस्मिता पर
शंकित होती
कि
इस समय
मैं हूँ क्या नहीं?
यदि हूँ तो,
गंध का स्वाद
क्यों नहीं आता,
जब कि गंधवान्
उपस्थित है सम्मुख
इसी बीच स्पर्शा भी इस विषय में
सक्रिय होती
अपनी तृषा बुझाने,
जब वह छुवन हुआ
स्पर्शा ने घोषणा कर दी

कि
यहाँ प्रकृति नहीं है
मात्र प्रकृति का अभिनय है
या प्रकृति का अविनय है
माया छल
ये फूल तो हैं
पर ! कागद के हैं
तब तक
नासा की आसा
निराशता में लज्जावश
डूबती चली
फलस्वरूप
भ्रम विभ्रम से
भ्रमित हुआ
भ्रमर - दल
उड़ चला वहाँ से
गुनगुनाता, कहता जाता
कि
सत्य की कसौटी
नेत्र पर नहीं
संयम - नियंत्रित
ज्ञान - नेत्र पर
आधारित है ।

□□□

नाटक

सारा का सारा
यह संसार
केवल है
एक विशाल नाटक
तू इसमें
भाँति - भाँति के भेष धर
भाग ले,
तू इसे खेल
कोई चिन्ता नहीं
किन्तु
इस बात का भी ध्यान रख
इसमें तू
कभी
भूल कर भी
ना.... अटक !

□□□

सरगम स्वरातीत

सत् से जन्म ले
सत् में छद्म ले
हरदम होती हो
हरदम खोती हो,
कभी - कभी
अभाव के घाव पर
मरहम होती हो
स्वरातीत भाव पर
सरगम होती हो
केन्द्र को छोड़ कर
परिधि की ओर
दौड़ रही हो,
अनन्त को छोड़ कर
अवधि की ओर
मोड़ रही हो स्वयं को
ओ! लहरों पर लहरें
रजत राजित गरजे
उत्तर दो !
इस ओर भेजकर
सरलिम तरलिम नजरें !

□□□

बधिर बनूँ

निर्गुण से मिलने का
वार्ता विचार - विमर्श कर
तदनु चलने का
सगुण परमात्मा में
भावुक - भाव
उभर आया है,
और इधर
सघन नीलिमा ले
नील गगन
नीचे की ओर
उतर आया है,
बीच में बाधक बनकर
साधक के साधना - पथ पर
तभी तो
कहीं नियति ने भेजी है
बाधा दूर करने
अरुक अथक
अविरल उठती आ रही हैं
लहरों पर लहरें,
इनकी ध्वनि
वे ही सुन सकते
जो वैषयिक क्षेत्र में
बने हैं पूर्ण बहरे !

□□□

चख जरा

शाश्वत निधि का
भास्वत विधि का
धाम हो
राम, अभिराम हो
क्यों बना तू!
रावण सम
आठों याम
दीन - हीन
पाप - प्रवीण,
'है' उसे
बस लख जरा
बहुत दूर जाकर
चेतना में
लीन हो
सुधा - पीयूष
बस ! चख जरा।

□□□□

अवतार !

उतरा धरा पर
चिद्विलास
मानव बन
करनी कर
मानव - पन पा
मानव पनपा,
तू मान वही
मान प्रमाण का पात्र बना
पायी अन्तिम शान्ति
विश्रान्ति
फिर वहाँ से लौटा कहाँ ?
लौटना अशान्ति
क्लान्ति, भटकन भ्रान्ति है
दुग्ध का विकास होता है
घृत का विलास होता है
घृत का लौटना किन्तु
दुग्ध के रूप में
सम्भव नहीं है ।

□□□

छले छाँव में

काया की नाव में पले हैं
माया की छाँव में छले हैं
हम तो निरे
अनजान ठहरे
इतने विचार
कहाँ हों गहरे
नहरों से पूछें
या लहरों से
कहाँ से आती कहाँ जाती
ये लहरें?
लहरों पर लहरें हैं
क्या? लहरों में लहरें।

□□□

कैंची नहीं, सुई बन

चिर से बिछुड़े
दो सज्जन मिलते हैं
वृद्धावस्था में
परस्पर प्रेम वार्ता होती है
गले से गले मिलते हैं
गद्‌गद कण्ठ से,
एक ने पूछा एक से
तुमने क्या साधना की है
पर के लिए और अपने लिए ?
उत्तर मिलता है
द्वैत से अद्वैत की ओर बढ़ना हो
टूटे दो टुकडों को
एक रूप देना हो
तो सुनो
सुई होना सीखा है !
फिर दूसरे ने भी पूछा
इस दीर्घ जीवन में
ऐसी कौन सी साधना की तुमने
फलस्वरूप सब के स्नेह भाजन हो,

उत्तर मिलता है
कि
कर्म के उदय में
जो कुछ होना सो होना है
सो धरा - सा
जरा होना सीखा है
दूसरों के सम्मुख
अपनी वेदना पर
भला ! रोना ना सीखा है,
हाँ !
दूसरा आ अपनी
व्यथा - कथा
सुनाता हो, रोता हो
यह मन भी व्यथित हो रोता है
और तत्काल
उसके आँसू
जरा धोना सीखा है ।

□□□

मौन मालती

ओ री मानवती
मृदुल मालती
क्यों न मानती,
मुड़ मुड़ कर
मोहक - मादक
मदिरा भर कर
प्याला ले कर
मेरे सम्मुख
आती है
अपना ही गीत
गाती है
तू रागिनी है
स्वैर विहारिणी है
विरागनी यह मति
बाध्य होकर
बाहर आती है
नाक फुलाती – सी
नासिका कहती यूँ
तभी मालती भी

गूढ़ तत्त्व का उद्‌घाटन
करती है
मौन रूप से
कि
ज्ञेय तत्त्व भिन्न है
ज्ञान तत्त्व भिन्न है
ज्ञेय का अपना रूप
स्वरूप है,
क्रिया - कर्म है
ज्ञान का अपना भाव - स्वभाव है
गुण धर्म है
यद्यपि
ज्ञेय - ज्ञायक सम्बन्ध है हम दोनों में
ज्ञान जानता है
ज्ञेय जाना जाता है
किन्तु ज्ञान जब तक
निज को तज कर
पर को अपना विषय बनाता है
निश्चित ही वह
सराग है सदोष तब तक
पर का आदर करता है
अपना अनादर,

तब,'पर' पर आरोप आता है
कि
पर ने राग जमाया
ज्ञान में दाग लगाया
मैं तो अपने में थी
हूँ रहूँगी चिर काल !
किन्तु तू
ओ री नासिका !
तू ज्ञान की उपासिका कहाँ है?
ज्ञान की उपहासिका है
अपनी सुरभि भूल जाती है
पर सुगन्धि पर फूल आती है
यह कौन सी विडम्बना है
स्वयं को धोखा देना ।

□□□

बादल धुले

धरती को प्यास लगी है
नीर की आस जगी है
मुँख - पात्र खोला है
कृत - संकल्पिता है,
कि
दाता की प्रतीक्षा नहीं करना है
दाता की विशेष समीक्षा नहीं करना है
अपनी सीमा
अपना आँगन
भूल कर भी नहीं लाँघना है,
क्योंकि
पात्र की दीनता
निरभिमान दाता में
मान का आविर्माण कराती है
पाप की पालड़ी भारी पड़ती है,
और !
स्वतन्त्र स्वाभिमान पात्र में
परतन्त्रता आती है
कर्त्तव्य की धरती
धीमी धीमी नीचे खिसकती है,

तब!.
लटकते दोनों अधर में
तभी तो
काले - काले
मेघ सघन ये
अर्जित पाप को
पुण्य में ढालने
जो सत्पात्र की गवेषणा में निरत हैं
पात्र के दर्शन पाकर
गद्‌गद हो
गड़गड़ाहट ध्वनि करते
सजल - लोचन
सावन की चौंसठ - धार
पात्र के पाद - प्रान्त में
प्रणिपात करते हैं
फिर तो
धरती ने बादल की कालिमा
धो डाली
अन्यथा
वर्षा के बाद
बादल - दल
विमल होते क्यों?

□□□

मुक्तिका

क्यों मुग्ध हुआ है
शुक्तिका पर
शुक्ति का खोल
एक बार तो झाँक ले
और ! आँक ले
भीतर की मुक्तिका पर
सदा - सदा के लिए
अवश्य मुग्ध होगा !
कहाँ भटकता तू
बीहड़ जंगल में
बाहर नहीं
हे सन्त !
बसन्त बहार
भीतर मंगल में है।

□□□

तोता क्यों रोता ?

प्रभाकर का प्रचण्ड रूप है
चिल - चिलाती धूप है
निदाघ का अवसर है
भरसक प्रयास चल रहा है
सरपट भागना चाह रहा है,
पर ! भाग नहीं पा रहा है भानु
सरक रहा है धीमे - धीमे
अस्ताचल की ओर,
और इधर
सरफट रहा है
फल भार ले झुका है
तपी धरा पर नग्न - पाद
आम्र - पादप खड़ा है
अपने प्रांगण में
दाता के रूप में
पात्र की प्रतीक्षा है
लो ! पुण्य का उदय आया है
कठिन परिश्रमी
हरदम उद्यमी
पदयात्री पथिक
पथ पर चलता - चलता

रुकता है निस्संकोच
सघन छाँव में
घाम - बचाव में
किन्तु यकायक
दाता का मन पलटता है
विकल्प - विकार से लिपटाता है
कि
पात्र के मुख से
वचन तो मिलें
मीठे मीठे
मिश्री मिले
प्रशंसा के रूप में,
महान दाता हो तुम
प्राण - प्रदाता हो तुम
और दान - शास्त्र की
जीवन गाथा हो तुम !
आदि - आदि,
अथवा
कम से कम खड़े खड़े
दीन - हीन से
याचना तो करे
दोनों हाथ पसार

अपना माथ सँभार
और दाता को
मान - सम्मान से पुरस्कृत करे,
कुछ तो करें
दाता कुछ देता है
तो, प्रतिफल के रूप में
कुछ लेना भी चाहता है
लेन - देन का जोड़ा है ना !
लो! संतों की वाणी भी
यही गाती है
'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'
अस्तु!
और!
मौन सघन होता जा रहा है
अपना अपना कर्त्तव्य
गौण, नगन होता जा रहा है
इस स्थिति में
कौन? रोक सकता है इस प्रश्न को,
कि
कि कौन? विघन होता जा रहा है
दाता की मुख - मुद्रा

हृदय को अनुसरण कर रही है
और भाव - प्रणाली
ललाट - तल पर आ
तरल तरंगायित है
भ्रमित भंगायित है
जो कुछ है वितरण कर रही है,
और इसी बीच
अयाचक वृत्ति का पालक पात्र
मौन मुद्रा से
समयोचित भावाभिव्यक्ति
सहज - भाव से करता है,
कि,
हे आर्य!
दान देना
दाता का कार्य है
प्रतिदिन अनिवार्य है
यथाशक्ति
तथाभक्ति
मान - सम्मान के साथ,
पाप को पुण्य में ढलना है ना !
और यह भी सत्य है
पात्र मान - सम्मान के बिना
दान स्वीकार नहीं करेगा,
कारण विदित ही है

दान क्रिया में दाता
प्रायः मान करता है
अहं का पोषक बनता है,
और पात्र यदि
दीनता की अभिव्यक्ति करता है
स्वधीनता को शोषक बनता है
किन्तु!
मोक्ष - मार्ग में
यह अभिशाप सिद्ध होता है
इससे विरुद्ध चलना
वरदान सिद्ध होता है,
इसलिए
समुचित विधान यही है
दान से पूर्व मान - सम्मान हो
वह भी भरपेट हो
बाद में दान
भले ही अल्प/अधपेट हो
सहर्ष स्वीकार है
और यह भी ध्यान रहे
याचना, यातना की जनी है
कायरता की खनी है
इस पात्र को
कैसे छू सकती है वह
यह वीरता का धनी है
सदा - सदा के लिए

इसमें धीरता आ ठनी है ,
लो ! और यह कैसा विस्मय!
फलों की भीड़ से घिरा
नीड़ में बैठा बैठा
निस्संग तोता
इस मौन वार्ता को पीता है
जो मांसाहार से रीता
जीवन जीता है,
स्वैरविहारी है
फलाहारी है
अतिथि की ओर निहारता है अनिमेष !
मन ही मन विचारता है
अभूतपूर्व घटना है मेरे लिए
प्रभूत पुण्य मिलना है मेरे लिए
और सुरभि से निरा महकता
सुन्दरता से भरा चहकता
पक्व रसाल चुनता है
अतिथि के लिए
दान हेतु,
किन्तु
तत्काल क्या हुआ
सुनो तुम!
मनोविज्ञान में निष्णात जो है
अतिथि की ओर से
मौन भाषा की शुरूआत और होती है
कि

यह भी दान स्वीकार नहीं है इसे
यद्यपि इसमें
पूर्व की अपेक्षा
मान - सम्मान का पुट है
और भरपूर है,
किन्तु !
दाता दान को मजबूर है
पात्र को देखकर
और!
पर पदार्थ को लेकर
पर पर उपकार करना
दान का नाटक है
चोरी का दोष आता है
यदि अपनत्व का दान करते हो
श्रम का बलिदान करते हो
स्वीकार है,
अन्यथा यह सब वृथा है
तथा स्व - पर के लिए
सर्वथा व्यथा है।
दान की कथा सुनकर
मूक रह जाता तोता
भीतर ही भीतर
उसका मन व्यथित होता है
अकर्मण्य जीवन पर रोता है
तन भी मथित होता हैं उसका,
और !

सजल लोचन कर
निजी आलोचन कर
प्रभु से प्रार्थना करता है
अगला जीवन इसका
श्रम - शील बने
शम - झील बने
और! बहुत विलम्ब करना उचित नहीं
अतिथि लौट न जाये
खाली हाथ !
ऐसा सोचता हुआ
उसी पल एक
पका फल
अननुभूत भाव से
अपने आपको
भरा हुआ सा
अभिभूत अनुभूत करता है
पूत सफलतीभूत बनाने
जीवन को दान - दूत बनाने
जिसमें नव - नवीन भाव
प्रसूति होता है
कर्त्तव्य के प्रति
प्रस्तुत करता है
अतिथि का रूप निरख कर
अतिथि का स्वरूप परख कर
जीवन को दिशा मिल गई,
चिर से तनी

और घनी निशा टल गई
दान की उपासना
जागृत हुई
मान की वासना
निराकृत हुई
राग, विराग से मिलने
आकुल है
पंक, पराग से मिलने
आतुर है,
और बन्द अधर खुलते हैं
शब्द 'अधर' डुलते हैं
आगत का स्वागत हो
अभ्यागत आदृत हो
सेवा स्वीकृत हो
सेवक अनुगृहीत हो
हे स्वामिन्! हे स्वामिन्! हे स्वामिन् !
और दान कार्य सम्पादन हेतु
सहयोग के रूप में पवन को
आहूत करता है
वन - उपवन - विचरणधर्मा
तत्काल आता है पवन
फल से पूर्व - भूमिका विदित होती है उसे
कि
ये पिता हैं (वृक्ष की ओर इंगन)
इनका पित्त प्रकुपित है
तभी मुझ पर कुपित हैं

आँगन में अतिथि खड़े हैं
ये अपनी धुन पर अड़े हैं
स्वयं दान देते नहीं
देने देते नहीं,
मान प्रबल है इनका
ज्ञान समल है इनका
मेरे प्रति मोह है
पर के प्रति द्रोह है
क्या ? पूत को कपूत बनाना चाहते हैं ये
पूत पवित्र नहीं,
और पवन को इंगित करता है पका फल
मैं बन्धन तोड़ना चाहता हूँ
इस कार्य में सहयोग अपेक्षित है
'समझदार को इशारा काफी है'
सूक्ति चरितार्थ हुई,
और पवन ने
एक हल्का सा
झोंका दे दिया
प्रकारान्तर से
वृक्ष को धोखा दे दिया
रसाल फल
डाल से खिसक कर
शून्य में दोलायित हुआ
अर्पित होने, लालायित हुआ
चिर के लिए बन्धन क्रन्दन

पलायित हुआ,
पुनः पवन को समझाता है
मुझे इधर उघर नहीं गिराना
सीधा बस!
पात्र के पाणि - पात्र में गिराना
और एक झोका देने पर
डाल के गाल पर !
फल, कर में आ पात्र के
अर्पित होता है,
स्वप्न साकार होता है
और सत्कार्य में भाग लेकर
पवन भी बड़भागी बनता है
पाप - त्यागी बनता है।
सज्जन समागम से
रागी विरागी बनता है
नीर, क्षीर में गिरता है
शीघ्र क्षीर बनता है,
और पथ पर
सहज चाल से पूर्ववत्
चल पड़ा वह अतिथि
उधर डाल के गाल पर
लटकता अधपका
फलों का दल
बोल पड़ा